ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-2 (Apr.-June) 2025
Page No.- 21-25
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

डॉ. रोली द्विवेदी
प्राचार्य,
सेंट पॉल टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज,
बिरसिंहपुर, समस्तीपुर, बिहार,
पिन कोड- 848102.

Corresponding Author :

डॉ. रोली द्विवेदी
प्राचार्य,
सेंट पॉल टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज,
बिरसिंहपुर, समस्तीपुर, बिहार,
पिन कोड- 848102.

सार्वभौमिक सृजन, समय और समाज के सन्दर्भ में 'तम भाने लगा'

शोध सारांशिका : मनुष्य जब जब टूटा है, बिखरा है, गीत ने उसे संबल प्रदान किया है। संघर्ष की भावना को समझाने का कार्य हमारा है। गीत अपना कार्य कर रही है। गीत के सर्जक इसी विघटित हो रहे समाज के सदस्य हैं। यह समाज में व्याप्त समस्याओं से, स्थितियों एवं परिस्थितियों से वे रोज ही, दिन-प्रतिदिन दो-चार हो रहे हैं। कवि-हृदय का दो-चार होना एक बड़े परिवर्तन का संकेत माना जाता है। आने वाला समय किस नए समय में परिवर्तित होने जा रहा है, यह तो समय बताएगा पर गीत विधा समाज को किस नए ढांचे में ले जाना चाहती है यह डॉ0 जयशंकर शुक्ल जी के नवगीत-संग्रह "तम भाने लगा" को पढ़कर समझा जा सकता है।

बीज शब्द : जय-पराजय, परिवर्तनकामी, संघर्ष-चेतना, अभिव्यक्ति, जन-आन्दोलन, गीत-रचना, लोकप्रियता, रचनात्मकता, गतिशीलता, विकास, तात्पर्य, जनमन, आदर्शों का सीमांकन, कविता, कवित्व, नित-प्रतिदिन, समृद्ध, मानवीयता।

इस पुस्तक की भूमिका में अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए नचिकेता जी कहते हैं "यह निर्विवाद है कि गीत की रचना का सम्बन्ध लोक (जन)-मन की गति से होता है। गीत में जनमन के अवसाद-उल्लास, सुख-दुःख, उमंग-उत्साह, आशा-आकांक्षा, जय-पराजय और परिवर्तनकामी संघर्ष-चेतना की अभिव्यक्ति होती है, साथ ही जन आन्दोलन में गीत-रचना की लोकप्रियता, रचनात्मक गतिशीलता और विकास को सही दिशा मिलती है।" तात्पर्य है कि गीत जब-जब जनमन और जन आन्दोलनों के करीब आया है उसकी रचनाशीलता गतिशील हुई और उसकी लोकप्रियता भी बढ़ी।

गीत समय सापेक्ष है और उनमें भावना विचारशीलता के साथ-साथ प्रतिबद्धता का समावेश हमें बहुत ही गहनता से दिखाई पड़ता है। आज के युग को आधार बनाते हुए यदि हम कविताओं का सापेक्ष विश्लेषण करें तो सहज ही पता चलता है कि रचनाकार अपनी रचनाओं को लेकर बेहद सजग रहते हुए नवीनतम भाषा दिशा को सहज शिल्प के माध्यम से एक विशेष लयात्मकता को लेकर आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। "मानवीय संवेदना और उसके प्रति लगाव के साथ-साथ प्रतिबद्धता का चित्रण डॉक्टर जयशंकर शुक्ल की कविताओं में हमें विशेषतया 'तम भाने लगा' नमक संग्रह में बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग से विवेचित एवं विश्लेषित दिखाई पड़ता है।"[1]

संग्रह की कविताओं में नवीनता कवि की प्रखर गीत चेतन की अभिव्यक्ति को स्वर देता है यह विवेचना हमें संपूर्ण संग्रह में इसकी कविताओं के साथ-साथ इसकी भूमिका और आत्मकथा में कवि के द्वारा स्वयं चिन्हित चित्रित एवं विवेचित किया गया दिखाई पड़ता है जो आने वाले समय में इस संग्रह की कल जनता के साथ-साथ कई की काव्य के प्रति चेतना और उसके सापेक्ष प्रवर्तन को निश्चित रूप से एक अलग मुकाम देता हुआ दिखाई पड़ेगा।[2]

चल रहे सम्बन्ध शर्तों पर
सतत अनुरागियों के
भ्रष्ट होते जा रहे आचार
अब बैरागियों के
द्वेष के साम्राज्य में कैसे
मिलन की बात संभव।।"

आज भी जब मनुष्य लगभग भटकाव की स्थिति में है, गीत विधा उसे मानव-पथ पर लाने के लिए अनवरत संघर्षरत है। डॉ0 जयशंकर शुक्ल वर्तमान समय के एक सशक्त नवगीतकार हैं। वे समय-समाज में हो रहे तमाम परिवर्तनों के सीधे तौर पर प्रत्यक्ष गवाह हैं। इनके कवि-हृदय को समझने का प्रयास किया जाए, यह आसानी से समझा जा सकता है, उनकी चिंता मनुष्य को मनुष्य रूप में देखने की चिंता है। वे नहीं चाहते कि आदिम सभ्यता एवं संस्कारों से विमुक्त हो चुका मानव पुनः उसी सभ्यता एवं संस्कार का पोषक बने।[3]

अर्थ नहीं देता जीवन /
कमियाँ बतियाती है
छंदहीन संबंधों में /
कविता सकुचाती है।।"

दरअसल सभ्यता एवं संस्कार में जितने हद तक मानव-समाज अपने अतीत के दहलीज पर या यों कहें कि ड्योढी पर कदम रखने के लिए लालायित हुआ है उससे अधिक कविता भी उसी रूप के निकट पहुँचती जा रही है। दोनों को संवारने और सुन्दर रूप में यथावत बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि स्वच्छंद प्रवृत्ति की तरफ बढ़ रही सामाजिक मांग को नियंत्रित किया जाए और इस प्रकार आदर्शों का सीमांकन किया जाए कि कविता का कवित्व भी बना रहे, नित-प्रतिदिन समृद्ध होता रहे, मानव की मानवीयता और उसका समाज भी।[4]

कवि का यह सुझाव कितना सार्थक हो सकता है इस उद्देश्य में-

"घर के चौखट मौन हुए /
वातायन बोल रहे
दरवाजों से सांकल अपने /
रिश्ते तोल रहे
मुख्य द्वार की लाज /
सुरक्षित भीतों में है
आओ इनको समरूपी /
संसार दिखाएँ

छन्दहीन हो जाना कविता के अभिव्यक्ति और सौन्दर्य से हीन होना है। परिवार-विहीन होना मनुष्य के अस्तित्व और आधार से हीन होना है। दोनों में रागात्मक संबंधों का होना आवश्यक है। लय और सुर का सामंजस्य आवश्यक है।[5]

सामंजस्य से ही विकास की संभावना होती है। विकास उसी की होती है जो सामंजस्य पूर्ण वातावरण में रहने का अभ्यास करता है। विडंबना की स्थिति ये है कि आज दोनों को, कविता और मनुष्य को, लय, सुर और सामंजस्य से दूर रखने की बात की जा रही है। अभ्यास करने की क्षमता से हम क्षीण हुए हैं। अभ्यास की क्षमता से क्षीण होना संवाद हीन होना है।[6]

बड़े बड़े अनुबंधों में /
अब सुचिता नहीं रही
सौदागर के मन में /
कोई गुरुता नहीं रही
मूल्यों की है हार /
सिसकता जीतों में है...

सम्वाद्धीनता से जितने हद तक सामायिक मनुष्य विचलित हुआ है उससे कहीं अधिक समसामयिक कविता के विभिन्न रूप भी। आज के इस विसंगतिपूर्ण वातावरण में इन दोनों को रूप एवं सौन्दर्य प्रदान करने वाले प्रतिमानों एवं संसाधनों को उसके विकास तत्व में बाधक स्वीकारा जा रहा है। पर क्या परंपरा और समाज से अलग-थलग होकर रहना किसी भी स्थिति से हमारे लिए हितकर है? आज के समय में सबसे बड़ी विसंगति इसी बात की है।[7]

नई पीढ़ी पूर्ण स्वतंत्रता की चाह में स्वच्छंद हो जाना चाहती है।

लुप्त हो रही मानवता /
दानवता खूब बढ़ी
ज्यों कटते पेड़ों की /
पीड़ा सबने यहाँ पढ़ी
खो जाने की चिंता /
अब तो चीतों में है

नयी कविता स्वच्छंद हुई। आज वह स्वच्छंदता से भी स्वच्छंद होने की मांग कर रही है। परिणामतः एक पूरी की पूरी समृद्ध परंपरा का क्षरण हो रहा है। इसके आवरण में हमारे आचार, विचार एवं संस्कारों की परिभाषा बदलती जा रही है।[8]

यह एक और विडंबना की स्थिति है कि इस भयावह बदलाव की स्थिति में सिद्धस्थ कविगण मौन हैं। सत्य यह भी है कि परिवर्तन मनुष्य के हृदय पर सीधे चोट करते हैं। चोट लगने की स्थिति में व्यक्ति चिंतन के धरातल पर सक्रिय नहीं हो पाता, चिंताओं में मशगूल अवश्य हो जाता है।-

चाक पर चलते हुए
दो हाथ
हमसे पूंछते हैं
अनगढ़ों के दौर में
कैसे
सृजन की बात संभव

'मिलन' और 'सृजन' मानवीय चेतना के दो मुख्य आयाम हैं। 'मिलन' में 'सृजन' की संभावना कम होती है। सृजन के माध्यम से मिलन के लिए प्रयास किया जा सकता है लेकिन 'अनगढ़ों के दौर में' इस प्रयास की सार्थकता साकार रूप ले सके; यह कार्य कुछ असंभव तो नहीं पर कठिन जरूर है।[9]

तीर सबके कमान में है। जो निपुण और दक्ष हैं उनके भी और जो नौसिखिए हैं उनके भी। निशाने भरपूर लगाए जा रहे हैं। सवाल ये है कि निशानों की ये आजमाइस हो किसके लिए रहा है?

वर्तमान सृजन की जो चिंता होनी चाहिए,

जिसकी चिंता होनी चाहिए वह इनके चिंतन-प्रक्रिया से बाहर है। तो क्या यह सही नहीं है कि जितने भी कविगण, साहित्यकार एवं साहित्य चिन्तक हैं वे कहीं न कहीं अनुबंधों के दायरे में बंधकर अपना सृजन कर्तव्य पूरा कर रहे हैं? जबकि एक सत्य यह भी है कि जिनके चिंतन और विचारों में ये क्षमता है वे या तो चुप मारकर बैठ गए हैं अथवा उन्हें कोई सुन नहीं रहा है।[10]

इस प्रसंग में महाकवि तुलसी की ये पंक्तियाँ बार-बार याद आती हैं-तुलसी पावस के समय धरी काकुलनि मौन। अब तो दादुर बोलिहैं, हमे पूछिहैं कौन।" मेढकों के टर्रटोईं में कोयलों की सरस आवाज कहाँ किसके कान तक पहुँच पाती है और फिर जब स्वार्थता की स्थिति दोनों तरफ से बराबर की हो; फिर ऐसी बात करना तो दूर इस बात की परिकल्पना करना भी निरर्थक है।[11]

'मैं चुप रहता हूँ' सृजन के इन्हीं बुनियादी प्रश्नों की तहकीकात करती अभिव्यक्ति है-

सब कहते हैं-
कुछ तो बोलो
मैं चुप रहता हूँ ....?
समझौतों की
परतें खोलो
मैं चुप रहता हूँ .....।

नव्यता की चाह आज के रचनाकारों में कुछ अधिक शुमार है। जनवादी, प्रगतिवादी, प्रगतिशील वादी कहने, कहलाने और बनने की चाह सबमें उपजी है। चाहत की अंधी दौड़ में सृजन-धर्मिता कुंठित हुई है। कुंठा में सामाजिकता का निर्वाह होना कठिन होता है। यह प्रवृत्ति नया गुट बनाने के लिए तो सार्थक हो सकती है पर सृजन-संवाद के लिए सर्वथा घातक होती है। शुक्ल जी के यहाँ यह प्रवृत्ति नहीं है। यहाँ ईमानदारी है।[12]

मंचों ने फूहड़ता ओढ़ी
दो अर्थी संवाद बढ़े हैं
इन्हीं पथों का आलंबन ले
कितनों ने अनुवाद गढ़े हैं
अनुवाद कहें-
मौलिकता को लो /
मैं चुप रहता हूँ।।"

गीत/नवगीत के कथ्य एवं शिल्प को यथार्थ के धरातल पर पिरोने के लिए सार्थक प्रयत्न किया गया है। मधुकर अष्ठाना जी के शब्दों में कहें तो "नवगीत अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों से जूझते हुए, भावानुकूल भाषा, शिल्प एवं कथ्य की नए रूप में तलाश करता है। इसमें रचनाकार की अन्तश्चेतना सम-सामयिक सम्वेदना का विस्तार करती है और वर्तमान शोषण-उत्पीड़न, त्रासदी, विसंगति, विषमता, विघटन, विरूपता, विकृति, विवशता, मानवीय मूल्यों में हास, सांस्कृतिक पतन आदि के मध्य आम-आदमी के जीवन-संघर्ष को चित्रित कर चिंतन हेतु पाठक को अभिप्रेरणा प्रदान कर प्रतिरोध-प्रतिकार का सन्देश देती है।"[13]

कवियों की चौपालों में अब
गीत नहीं अनुबंध गूंजते
चमत्कार की प्रत्याशा में
ऊंचे स्वर में छंद झूमते
वे छंद कहें- /
कुछ नवता घोलो /
मैं चुप रहता हूँ

शुक्ल जी का यह संग्रह इन सभी उपादानों से समाविष्ट है। इसमें सामाजिकता की भावना से इस तरह जुडाव हुआ है कि ऐसा प्रतीत होता है, हम नवगीत नहीं वर्तमान समय को पढ़ और देख रहे हैं, क्योंकि "आजकल नवगीत जब भी लिखा और पढ़ा

जाता है, तब यह मान लिया जाता है कि हम आज को पढ़ रहे हैं, आज की विसंगतियों को देख रहे हैं, समकालीन जीवन और उसकी परिस्थिति को परख रहे हैं, समझ रहे हैं।"[14]

आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता की तरफ कदम बढ़ाते हुए समाज के प्रमुख परिवर्तन इनके कवि-हृदय से अभिव्यक्ति पाकर बहुत कुछ कहने और समझने के लिए प्रेरित करते हैं। यह इसलिए कि हम समय समाज में वर्तमान रहते हुए भी वर्तमान समय और समाज में नहीं हो पा रहे हैं। यह चिंता न तो आज के साहित्य में दिखाई दे रहा है और न ही तो समाज में रहने वाले तथा सामाजिक परिवर्तन की पक्षधरता करने वाले विशेष तथाकथित बुद्धिजीवियों में ही।[15]

जनसेवी और बुद्धिजीवियों की जितनी परिभाषाएँ कभी की जाती थीं, वे सब आज के इस समय में परिवर्तित हो चुकी हैं। व्यक्ति-सत्ता-समाज के मध्य जो रिश्ते एक आधार का कार्य करते थे वे विघटित होकर वैयक्तिकता और लोलुपता की भेंट चढ़ गए हैं।[16]

मानवीय संवेदना और विचार शीलता के आधार पर समय-समाज में परिव्याप्त स्वार्थता की ऐसी दौड़ को शुक्ल जी कितने सुन्दर तरीके से अभिव्यक्त करते हैं।

सन्दर्भ-सूची :

1. अधीर, राम, (सं.) संकल्प रथ (मासिक पत्रिका), अंक - जून-2014, डॉ0 अनिल कुमार का लेख, (मन-बंजारा : एक नई तजवीज) पृष्ठ-103.
2. शुक्ल, डॉ0 जयशंकर, तम भाने लगा, दिल्ली, पूनम प्रकाशन, 2014-2015, पृष्ठ-13 .
3. अष्ठाना, मधुकर, हाशिए समय के, लखनऊ, उत्तरायण प्रकाशन, 2015, पृष्ठ-19
4. शुक्ल, डॉ0 जयशंकर, तम भाने लगा, दिल्ली, पूनम प्रकाशन, 2014-2015, पृष्ठ-31-32
5. अष्ठाना, मधुकर, हाशिए समय के, लखनऊ, उत्तरायण प्रकाशन, 2015, पृष्ठ-17
6. शुक्ल, डॉ0 जयशंकर, तम भाने लगा, दिल्ली, पूनम प्रकाशन, 2014-2015, पृष्ठ- 37
7. उपरिवत
8. अधीर, राम, (सं.) संकल्प रथ (मासिक पत्रिका), अंक - जून-2014, डॉ0 अनिल कुमार का लेख, (मन-बंजारा : एक नई तजवीज) पृष्ठ-113
9. उपरिवत
10. शुक्ल, डॉ0 जयशंकर, तम भाने लगा, दिल्ली, पूनम प्रकाशन, 2014-2015, पृष्ठ-51
11. अष्ठाना, मधुकर, हाशिए समय के, लखनऊ, उत्तरायण प्रकाशन, 2015, पृष्ठ-10
12. अधीर, राम, (सं.) संकल्प रथ (मासिक पत्रिका), अंक - जून-2014, डॉ0 अनिल कुमार का लेख, (मन-बंजारा : एक नई तजवीज) पृष्ठ-13
13. शुक्ल, डॉ0 जयशंकर, तम भाने लगा, दिल्ली, पूनम प्रकाशन, 2014-2015, पृष्ठ-
14. शुक्ल, डॉ0 जयशंकर, तम भाने लगा, दिल्ली, पूनम प्रकाशन, 2014-2015, पृष्ठ-83 .
15. अष्ठाना, मधुकर, हाशिए समय के, लखनऊ, उत्तरायण प्रकाशन, 2015, पृष्ठ-41.
16. शुक्ल, डॉ0 जयशंकर, तम भाने लगा, दिल्ली, पूनम प्रकाशन, 2014-2015, पृष्ठ-47.

•